जनसत्ता

18 जून, 2019

आतंकियों को पैसा

अब तो यह साफ हो चुका है कि पाकिस्तान आतंकी संगठनों को वित्तीय मदद दे रहा है और इस पैसे का इस्तेमाल विशेषरूप से भारत में अशांति और अस्थिरता फैलाने में किया जाता रहा है। हालांकि यह पहले से स्थापित सत्य है और इस बारे में भारत ठोस सबूतों के साथ अपना पक्ष रखता रहा है। दुनिया के दूसरे देश भी यह अच्छी तरह जानते हैं कि पाकिस्तान आतंकी संगठनों को वित्तीय मदद देता है। लेकिन अब तो वे लोग जिन्हें पाकिस्तान से पैसा मिलता रहा है, खुद इस बात को कबूल रहे हैं। इसके अलावा, आतंकी संगठनों को वित्तीय मदद उपलब्ध कराने पर नजर रखने वाली संस्था- फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्स (एफएटीएफ) ने भी खुलासा किया है कि पाकिस्तान आतंकी संगठनों को वित्तीय मदद रोकने के लिए कोई कार्रवाई नहीं कर रहा है। उसने इस दिशा में जो भी कदम उठाए हैं वे दिखावे से ज्यादा कुछ नहीं हैं। हाल में पाकिस्तान के बारे में ऐसी जो खबरें आई हैं, वे चौंकाने वाली हैं। इससे एक बात स्पष्ट है कि पाकिस्तान पर चाहे जितना अंतरराष्ट्रीय दबाव पड़े, वह अपनी हरकतों से बाज नहीं आने वाला। हालांकि हाल में उसने पहली बार आतंकी हमले के बारे में भारत को सूचना देकर दुनिया के समक्ष अपने को भारत के हमदर्द के रूप में दिखाने की कोशिश की है। लेकिन अब तक का पाकिस्तान का जो इतिहास रहा है, उसे देखते हुए भरोसा करना भी खतरे से खाली नहीं होगा।

जम्मू-कश्मीर की अलगाववादी नेता आसिया अंद्राबी ने राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआइए) के समक्ष इस बात का खुलासा किया है कि पाकिस्तान से उसे जो पैसा मिलता था, उसका इस्तेमाल वह घाटी में सेना और सरकार के खिलाफ महिलाओं से प्रदर्शन करवाने के लिए करती थी। सिर्फ आसिया को नहीं, ज्यादातर अलगाववादी नेताओं को पाकिस्तान सिर्फ इसलिए पैसे देता है कि वे घाटी में अलगाववादी आंदोलन, धरने-प्रदर्शन, पथराव जैसी गतिविधियां चलवाते रहें। इसी पैसे से अलगाववादी नेताओं ने घाटी में कई जगहों पर जायदाद बना ली हैं और बड़े कारोबार खड़े कर लिए हैं। एनआइए जम्मू-कश्मीर के अलगाववादी संगठनों को मिलने वाले पैसे की गहराई से जांच कर रही है, ताकि पैसे के मूल स्रोत तक पहुंचा जा सके। यह जांच इसलिए जरूरी हो गई थी कि अब तक अलगाववादी संगठनों के नेता यही कहते आए हैं कि उन्हें पाकिस्तान से इस तरह की कोई मदद नहीं मिलती और उनका मकसद आजाद कश्मीर के लिए संघर्ष है। पाकिस्तान भी यही कहता रहा है कि वह किसी आतंकी या अलगाववादी संगठन को मदद नहीं देता है। लेकिन एनआइए की जांच और अलगाववादी नेताओं के कबूलनामे ने पाकिस्तान को बेनकाब कर दिया है।

आतंक पर लगाम लगाने के लिए सबसे पहली जरूरत है कि आतंकी संगठनों को मिलने वाली आर्थिक मदद बंद हो। एफएटीएफ ने आतंकी संगठनों को वित्तीय मदद रोकने के लिए पाकिस्तान के लिए सत्ताईस मानक तय किए थे। लेकिन पाकिस्तान इनमें से पच्चीस मानकों पर खरा नहीं उतरा है। जाहिर है, आतंकी संगठनों को वित्तीय मदद रोकने की जो जिम्मेदारी उसे सौंपी गई, उस पर वह खरा नहीं उतरा। एफएटीएफ ने साल भर पहले पाकिस्तान को निगरानी सूची में डाल दिया था। लेकिन साल भर में पाकिस्तान सरकार ऐसा कोई ठोस काम नहीं कर पाई जिससे लगता कि वह आतंकी संगठनों पर लगाम कस रही है। हाल में एफएटीएफ की बैठक में भारत ने वे सारे ठोस सबूत रखे हैं जो यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि कैसे पाकिस्तान घाटी में अलगाववादियों को पैसा पहुंचा रहा है। एफएटीएफ के कड़े रुख से पाकिस्तान को अब समझ जाना चाहिए कि अगर वह आतंकी संगठनों की मदद करना बंद नहीं करेगा तो उसे इसकी भारी कीमत चुकाने को तैयार रहना चाहिए।

मिसाल बेमिसाल

कहते हैं- जहां चाह, वहां राह। वाकई इसमें कोई शक भी नहीं है। दुनिया में ऐसे जुनूनी लोगों की कमी नहीं है जिन्होंने अपने दम पर समाज को, व्यवस्था को बदल, कुछ नया करके इतिहास में नाम दर्ज कराया है। ऐसे जीवटता वाले लोग ही संकल्प करते हैं और उसे पूरा कर-के दिखाते हैं। ऐसी शख्सियतें किसी सरकारी मदद की भी मोहताज नहीं होतीं। ये प्रेरणा के ऐसे स्रोत हैं जो अपने बूते समाज के लिए ऐसे बड़े काम कर जाते हैं जो दुनिया के सामने मिसाल बनते हैं और लोगों को रास्ता दिखाते हैं। अक्सर हमें ऐसे लोगों के बारे में पढ़ने-सुनने को मिलता है और जब हम उनके काम को कसौटी पर परखते हैं तो लगता है कि यह असंभव नहीं था। इसके लिए लगन, मेहनत, ईमानदारी और निष्ठा की जरूरत होती है, जिसका आज हर जगह समाज, नागरिक संगठनों से लेकर सरकार तक में अभाव दिखाई दे रहा है। आज जब देश में अधिसंख्य प्राथमिक स्कूल खस्ताहाल हैं, एक सरकारी शिक्षक ने यह साबित कर दिखाया कि चाहें तो हम खुद नागरिकों के सहयोग से स्कूलों को खड़ा कर सकते हैं। इस शिक्षक की यह उपलब्धि दूसरों के लिए मिसाल है।

उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले में एक बेहद पिछड़े गांव अर्जुनपुर गढ़ा में जिस तरह से एक प्राथमिक विद्यालय को अकेले एक शिक्षक की पहल और प्रयास ने आज आदर्श विद्यालय बना दिया, वह मामूली काम नहीं है। इस काम में उन्हें साढ़े तीन दशक का लंबा वक्त लगा, लेकिन उन्होंने प्रयास नहीं छोड़े, हिम्मत नहीं हारी और व्यवस्था के सामने अपने को टिकाए रखा। इस शिक्षक ने 1982 में जब यहां नौकरी शुरू की, तब स्कूल की इमारत जर्जर थी और उस पर गांव वालों का कब्जा था। बच्चे आने का तो सवाल ही नहीं था। ऐसे में और कोई शिक्षक होता तो शायह दी ऐसा जोखिम लेता। लेकिन इस शिक्षक ने इस विद्यालय के कायाकल्प का संकल्प किया, जिसका सुफल आज गांव को मिल रहा है। आज गांव के इस स्कूल में बड़ा बगीचा, बच्चों के लिए भोजन कक्ष, साफ-सुथरा माहौल जैसी सुविधाएं तो हैं ही, सबसे बड़ी चीज गुणवत्तापूर्ण शिक्षा है। इस जीवट वाले शिक्षक के सामने बुनियादी सुविधाएं जुटाने से भी सबसे बड़ी चुनौती तो यह थी कि बच्चों को कैसे स्कूल लाया जाए, कैसे उनके परिवारों को शिक्षा के लिए प्रेरित किया जाए। लेकिन इसमें अंततः कामयाबी हासिल हुई। आज यहां बच्चों को पढ़ाई के अलावा बागवानी, स्वच्छता जैसे कामों से भी जोड़ा जाता है। इस विद्यालय ने जिस तरह अपने को खड़ा किया, उससे दूसरे स्कूलों को सीखने की जरूरत है।

ऐसी चुनौतियां जीवन में तब आती हैं जब हमारे पास कुछ होता नहीं है और हमारे सपने और लक्ष्य काफी बड़े होते हैं। तभी रास्ते बनते हैं। सिर्फ स्कूल इसके उदाहरण नहीं हैं। अगर सरकार ने दशकों तक सड़क नहीं बनाई तो गांव वालों ने खुद ही पहल की और पहाड़ खोदते हुए सड़क तक बना लीं। ऐसा एक नहीं कई जगह हुआ। दशरथ मांझी की कहानी हम सब जानते हैं। लोगों ने अपने बूते तालाब तक बना डाले। आज गांवों में सरकारी स्कूलों की दुर्दशा किसी से छिपी नहीं है। पीने के पानी का इंतजाम नहीं है। सड़कें नहीं हैं। हालत यह है कि सरकारें और जनप्रतिनिधि कभी ऐसे इलाकों में जाकर सुध तक नहीं लेते। इसलिए लोगों को ऐसा बीड़ा उठाने को मजबूर होना पड़ता है। हालांकि जनभागीदारी कोई बुरी बात नहीं है। लेकिन क्या भ्रष्ट और निकम्मे सरकारी तंत्र को इससे कुछ सीखना नहीं चाहिए!

कल्पमेधा

कागज अपनी किस्मत से उड़ता है और पतंग अपनी काबिलियत से। इसलिए किस्मत साथ दे या न दे लेकिन काबिलियत जरूर साथ देती है।

-एपीजे अब्दुल कलाम

बिजली वाहनों का भविष्य

अतुल कनक

बिजली से चलने वाले तंत्र के विकास के बाद कारें काफी महंगी हो जाएंगी और यह बढ़ी हुई कीमत आम ग्राहक को आकर्षित नहीं कर सकेगी। भारत सरकार इस समस्या के समाधान के लिए 'क्रेडिट प्वाइंट' जैसी सुविधा या टोल टैक्स आदि में कुछ खास किस्म की छूट का प्रावधान कर सकती है। चीन, अमेरिका या यूरोपीय संघ के सदस्यों की तरह इन वाहनों की खरीद पर सबसिडी देने का विचार फिलहाल भारत सरकार का नहीं है।

इस आवश्यकता को बहुत दृढ़ता के साथ रेखांकित किया जा चुका है कि सड़कों पर पेट्रोल या डीजल से चलने वाले वाहनों, विशेषकर कारों और दुपहिया वाहनों को बिजली से चलने वाले वाहनों से विस्थापित किया जाना चाहिए। यह न केवल पर्यावरण संरक्षण के लिए आवश्यक है, बल्कि यदि ऐसा कर पाना संभव हो सका तो पेट्रोलियम उत्पादों की खरीद में खर्च होने वाला देश का बहुत सारा धन भी बचाया जा सकता है। एक बार फिर सड़क परिवहन मंत्रालय को यह जिम्मेदारी सौंपी गई है और इस बात की पूरी संभावना है कि वह 'इलेक्ट्रिक व्हीकल्स' यानी बिजली से चार्ज होकर चलने वाले वाहनों को प्रोत्साहित करने की अपनी योजना को ठोस रूप देने में कोई कसर बाकी नहीं छोड़ेगा।

भारत ही नहीं दुनिया भर में पेट्रोल और डीजल से चलने वाले वाहनों के कारण पर्यावरण को होने वाले नुकसान के प्रति जागृति आई है और उन वाहनों को बेहतर विकल्प माना जा रहा है जिनकी बैटरी को बिजली से चार्ज करके आसानी से चलाया जा सकता है। चीन, अमेरिका और यूरोपीय संघ के देशों ने तो ऐसे वाहनों की खरीद पर आर्थिक प्रोत्साहन (सबसिडी आदि) देना भी प्रारंभ कर दिया है। भारत में भी कुछ प्रमुख कार उत्पादकों ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण पहल की है। बिजली से चलने वाले वाहन चूंकि भविष्य की जरूरत हैं और इस क्षेत्र में व्यापार की नई संभावनाएं छिपी हैं, इसलिए कुछ बड़ी कंपनियों ने तो इस दिशा में शोध, प्रयोग और अनुसंधान हेतु अच्छा खासा निवेश भी कर दिया है। उधर, भारत की सबसे बड़ी कार निर्माता कंपनी ने कुछ दिन पहले ही एक अप्रैल 2020 के बाद डीजल गाड़ियों का उत्पादन शनैः शनैः बंद कर देने का एलान कर दिया था। यह वह तारीख है जब वाहनों के लिए भारत-6 (बीएस-6) मानक अस्तित्व में आ जाएगा। तब मानकों के अनुसार डीजल इंजन बनाना डेढ़ लाख रुपए तक महंगा हो जाएगा।

दरअसल, पेट्रोल वाहनों की तुलना में डीजल से चलने वाले वाहन पर्यावरण को अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। विश्व वायु गुणवत्ता रिपोर्ट 2018 के अनुसार दुनिया भर में सबसे प्रदूषित वायु वाले पंद्रह शीर्ष शहरों में से दस शहर भारत के हैं। इसने भी नीति-नियंताओं को इस बात के लिए विवश किया कि वे हवा में वाहनों के कारण फैलने वाले प्रदूषण के समाधान के बारे में सोचें। लेकिन शहरों के विस्तार के कारण सभी वाहनों पर तो पाबंदी नहीं लगाई जा सकती। बेशक सार्वजनिक परिवहन एक समुचित समाधान हो सकता है, लेकिन नागरिकों को निजी वाहनों के उपयोग से पूर्णतः वंचित कर देना किसी भी दृष्टि से श्रेयस्कर नहीं कहा जा सकेगा।

ऐसे में बिजली से चलने वाले वाहन एक श्रेष्ठ विकल्प हो सकते हैं। भारत की योजना यह है कि सन 2030 तक सड़कों पर मौजूद वाहनों में से तीस प्रतिशत वाहन बिजली से चलने वाले हों। लेकिन यह रास्ता इतना आसान नहीं है। बिजली से चलने वाले तंत्र के विकास के बाद कारें काफी महंगी हो जाएंगी और यह बढ़ी हुई कीमत आम ग्राहक को आकर्षित नहीं कर सकेगी। भारत सरकार इस समस्या के समाधान के लिए 'क्रेडिट प्वाइंट' जैसी सुविधा या टोल टैक्स आदि में कुछ खास किस्म की छूट का प्रावधान कर सकती है। चीन, अमेरिका या यूरोपीय संघ के सदस्यों की तरह इन वाहनों की खरीद पर सबसिडी देने का विचार फिलहाल भारत सरकार का नहीं है। यों बीएस-6 मानक लागू होने के बाद डीजल कारों की कीमत में प्रत्याशित वृद्धि भी बिजली से चलने वाली कारों को प्रोत्साहित कर सकती है। यहां यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है कि कुछ साल पहले तक भारत में डीजल और पेट्रोल की कीमतों में बहुत अंतर रहा करता था। पेट्रोल की तुलना में डीजल बहुत सस्ता हुआ करता था। लेकिन अब स्थिति वैसी नहीं है।

लेकिन बिजली से चलने वाले वाहनों की खरीद के बाद ही उपभोक्ता वाहन के अपरिमित उपयोग के प्रति निश्चिंत नहीं हो सकेगा। बिजली से चलने वाली कारों में जिस लीथियम आयन बैटरी का इस्तेमाल होता है, उस बैटरी को एक बार पूरी तरह चार्ज करने के बाद सामान्य परिस्थितियों में कार को दो सौ से तीन सौ किलोमीटर तक चलाया जा सकता है। सामान्यतः शहरों में तीस से लेकर चालीस किलोमीटर तक गाड़ी प्रतिदिन चलती है। ऐसे में यह स्थिति पहली नजर में तो आदर्श प्रतीत होती है कि एक बार गाड़ी को चार्ज करने के बाद उसे अपनी

मंजिल तक ले जाया जाए। लेकिन एक बार बैटरी खत्म होने के बाद उसे पूरी तरह चार्ज करने के लिए पूरी रात चाहिए। विशेषज्ञों के अनुसार द्रुत गति से चार्ज करने वाले चार्जिंग स्टेशनों पर बैटरी बीस से पच्चीस मिनट में पूरी तरह चार्ज हो सकती है। लेकिन यदि बार-बार यह फास्ट चार्जिंग की गई तो इससे बैटरी पर बुरा असर पड़ेगा और वह अपेक्षाकृत कम समय तक ही चल पाएगी। उधर, पेट्रोल या डीजल खत्म होने पर किसी भी नजदीकी पेट्रोल-डीजल स्टेशन पर, जिनकी संख्या बहुत है, मनमाफिक ईंधन भरवाया जा सकता है। लेकिन देश में अभी इलेक्ट्रिक वाहनों के लिए चार्जिंग स्टेशनों की संख्या बहुत कम है और ऐसे में यदि बिजली से चलने वाली कार से किसी परिवार को लंबी यात्रा करनी पड़े तो उसे काफी परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है।

चार्जिंग में लगने वाले समय से बचने के लिए एक उपाय यह भी हो सकता है कि ऐसे विश्वसनीय स्टेशन विकसित किए जाएं जो डिस्चार्ज बैटरी के बदले चार्ज की हुई बैटरी उपलब्ध करा सकें। हालांकि कुछ कंपनियों ने इस दिशा में काम करना शुरू भी कर दिया है। लेकिन भारत में शहरों की दूरियां, सड़कों की हालत और लक्ष्य तक पहुंचने के लिए लोगों की आतुरता की प्रवृत्ति को देखते हुए इस दिशा में बहुत काम करना शेष प्रतीत होता है। विकसित देशों में सामान्यतः एक बैटरी एक लाख साठ हजार किलोमीटर या आठ वर्ष तक काम करती है। भारत में ये बैटरियां उपभोक्ताओं का कितना साथ निभा सकेंगी, यह आने वाला समय बिताएगा। लेकिन एक निश्चित अवधि के बाद बेकार हुई बैटरियों से निबटना भी समूची व्यवस्था के लिए बड़ी चुनौती होगा। प्लास्टिक कचरे से निबट रही दुनिया के सामने बेकार बैटरियों का ढेर लग जाएगा। ऐसे में आवश्यक है कि कारों के लिए बेकार हो चुकी बैटरियों को अन्य उपयोग में लाने के रास्ते सोचे जाएं। चीन और यूरोपीय संघ में तो कानून बना कर इन बैटरियों के समुचित व्यवस्थापन के लिए कार मालिकों को ही जिम्मेदार बनाया गया है और चीन में तो कुछ लोगों ने कार की बैटरियों को घरेलू उपयोग में लाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण काम भी किए हैं।

यदि बिजली से चलने वाली कारें बड़ी संख्या में भारत की सड़कों पर आईं तो बिजली की निर्बाध आपूर्ति भी आवश्यक होगी और कुछ शहरों को छोड़ दिया जाए तो इस स्थिति को हासिल कर पाना बहुत दुरूह लगता है। बेशक जिन लोगों के घरों में गैरेज हैं या जो अपने घर के भीतर कार खड़ी करते हैं, वो रात भर में बैटरी सहजता से चार्ज कर सकेंगे, लेकिन जो लोग अपने घर के बाहर गली में वाहन खड़ा करते हैं या अपने घर से दूर कार खड़ी करते हैं, उनके लिए वाहन की बैटरी को नियमित रूप से चार्ज करना बड़ी परेशानी का कारण बनेगा।

लेकिन तमाम परेशानियों के बावजूद डीजल और पेट्रोल के कारण होने वाले वायु प्रदूषण ने माहौल को जिस तरह दमघोंटू बना दिया है, उसे देखते हुए बिजली से चलने वाले वाहन हमारे समय की एक बड़ी जरूरत बन गए हैं। देखना है, सड़क पर बिजली से चलने वाले वाहनों की संख्या बढ़ा कर पेट्रोल-डीजल वाहनों की संख्या कम करने की सरकार की यह पहल कब और कैसा रंग दिखाती है?

मौसम की मार

अमरेंद्र कुमार राय

दुनिया मेरे आगे

प्राथमिक विद्यालय में एक कविता पढ़ी थी- 'एक बार छिड़ गई बहस, हवा और सूरज में, कौन अधिक बलवान, शक्तिशाली है हममें-तुममें।' बहस हो ही रही है कि हवा की नजर एक व्यक्ति पर पड़ जाती है। फिर हवा और सूरज बारी-बारी से उस व्यक्ति पर बल दिखाते हैं। हवा की रफ्तार का तो बहुत ज्यादा असर नहीं पड़ता, लेकिन सूरज की गरमी की वजह से वह व्यक्ति बुरी तरह त्रस्त हो जाता है और अपने शरीर से ज्यादातर कपड़े उतार कर आखिर एक पेड़ की छांव में जाकर बैठ जाता है। कहने की जरूरत नहीं कि सूरज जीत चुका था। हवा ने भी मान लिया कि सूरज उससे ज्यादा ताकतवर है।

वह कविता अब वर्षों बाद याद आई। साढ़े नौ बजे घर से दफ्तर के लिए निकला तो सोचा, जूता-मोजा पहनने से गरमी ज्यादा लगती है, इसलिए चप्पल पहन ली। मोटरसाइकिल पर बैठा तो थोड़ी ही देर बाद लगा कि गलती हो गई। शरीर का जो भी अंग खुला था, जलने लगा। पांव, हाथ, नाक-मुंह सब। जिस तरफ धूप थी, उधर तपन ज्यादा थी। बल्कि अपनी ही परछाईं से थोड़ा आराम मिल रहा था। लगा, आज फिर सूरज और हवा ने जोर-आजमाईश करने की ठान ली है। हवा तो तेज चली नहीं, हो सकता है कि सूरज ने कहा हो कि पिछली बार तुमने पहले अपना जोर दिखाया था, इस बार मैं पहले अपनी ताकत दिखाऊंगा। और वह दिखा रहा है। शाम होते-होते पता चल गया कि दिल्ली में अब तक का सबसे ज्यादा गरम दिन रहा। पारा 48 डिग्री सेल्शियस तक पहुंच गया।

दिल्ली में करीब पैंतीस साल से रह रहा हूं, पर ऐसी गरमी इससे पहले कभी महसूस नहीं की। लेकिन कुछ दिन पहले एक सुबह दरवाजा खोलते ही तपिश महसूस हुई थी। हालांकि तब सूरज की किरणों में तीखापन कम था। ऐसी गरमी एक बार वर्धा में महसूस की थी। वहां एक कार्यक्रम में शरीक होने गया था। विश्वविद्यालय के गेट पर बैठ कर चाय पी रहा था कि एक साहित्यकार मित्र आए और उन्होंने बताया कि यहां गरमी बहुत पड़ती है। सूरज उगने के साथ ही यहां बैठना मुश्किल हो जाता है। मैंने गौर किया कि वाकई वहां सामान्य से अधिक गरमी थी। विश्वविद्यालय परिसर के ज्यादातर मकान दोमंजिला या उससे ज्यादा ही थे। शायद वहां की भीषण गरमी को देखते हुए ही यह व्यवस्था की गई होगी। नीचे के कमरों में ताप कम पहुंचता है। गरमी इतनी थी कि कार्यक्रम में जाने से पहले मैंने दोपहर का खाना न खाने में ही भलाई समझी। वहां कुछ दिन और रुकने का मामला था। लेकिन गरमी देख कर मैंने वहां न रुकने का ही फैसला किया।

इसी तरह, एक बार पत्रकारिता की एक यात्रा के दौरान जोधपुर होते हुए जैसलमेर गया था। शाम को पुरानी दिल्ली से एक ट्रेन चलती थी। वह सुबह जोधपुर पहुंचाती थी। जोधपुर से भी रात को एक ट्रेन चलती थी जो सुबह जैसलमेर पहुंचाती थी। जैसलमेर पहुंचने में कोई दिक्कत नहीं हुई। एक जगह रास्ते में दोपहर का खाना खाने के लिए टेंट लगा कर इंतजाम किया गया। वहां इतनी गरमी थी कि पसीना पोंछना और खाना लगभग नामुमकिन था। वहां से आगे बढ़े तो पानी और ठंडे पेय की ढेर सारी बोतलें बस में भर ली गईं। लोग कहने लगे कि इतने की क्या जरूरत है! लेकिन करीब चार-पांच घंटे के भीतर ही सारा पानी और ठंडे पेय की बोतलें खाली हो गईं। सबका गला सूखने लगा।

बहरहाल, गंतव्य पर पहुंचने पर जान में जान आई। वर्धा और जैसलमेर में तो गरमी एक सामान्य तथ्य है। कहीं पहाड़ी इलाका है तो कहीं रेगिस्तानी। मगर दिल्ली क्यों इतनी तप रही है? ऐसी हवाई बातें बताई गईं कि पाकिस्तान से गरम हवाएं आ रही हैं। यह कोई नहीं बता रहा कि अगर हवा पश्चिम से आएगी तो मैदानी इलाकों की हवा में तपन ज्यादा होती ही है। यह भी बताना जरूरी नहीं समझा गया कि दिल्ली जैसे शहरों में जितने एयरकंडीशनरों का इस्तेमाल हो रहा है, उनसे निकली हवा इस गरमी को और ज्यादा मारक बनाने में क्या भूमिका निभा रही होगी।

इसके अलावा, हम जो पेड़ काट रहे हैं, उसकी वजह से न केवल दिल्ली, बल्कि पूरी दुनिया में गरमी बढ़ रही है। कुछ दिन पहले किसी ने सोशल मीडिया पर लिखा था कि पचास डिग्री सेल्शियस गरमी के बाद एयरकंडीशनर काम करना बंद कर देते हैं, बावन डिग्री तापमान होने के बाद चिड़ियां मर जाती हैं, पचपन डिग्री तापमान होने पर इंसान का खून उबल जाता है और वह मरने की हालत में पहुंच जाता है। जंगलों को काटना इसकी सबसे बड़ी वजह है। क्या हम अभी भी चेतेंगे? इसमें दी गई जानकारी जितना तथ्य है, उससे ज्यादा यह चेतावनी कि अगर हमने प्रकृति की अनदेखी और पेड़ों का कत्लेआम जारी रखा तो आने वाले दिनों की कल्पना करना हमारे लिए मुश्किल नहीं होना चाहिए।

चौपाल

हिंदी की राह

जिस हिंदी को जानने-समझने और सीखने के लिए दुनिया के तमाम देश आतुर हैं, उसी हिंदी को लेकर उसके देश के कुछ हिस्सों में हिचक दिखाई देना चिंता की बात है। तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था और दुनिया के सबसे बड़े बनते उपभोक्ता बाजार के नाते तमाम बहुराष्ट्रीय कंपनियां कारोबार के लिए भारत का रुख कर रही हैं। यहां कारोबार चलाने की खातिर के लिए वे भाषा की दिक्कत दूर करने के लिए हिंदी भाषी कर्मचारियों को तवज्जो दे रही हैं लेकिन हाल में राष्ट्रीय शिक्षा नीति के मसौदे में त्रिभाषा फॉर्मूले के तहत हिंदी को अनिवार्य बनाए जाने को लेकर दक्षिण के राज्यों में विरोध शुरू हो गया। यह बात और है कि लोकप्रियता हासिल करने के लिए वे अपना साहित्य हिंदी में पढ़ाने के लिए बेसब्र रहते हैं और अपनी फिल्मों को हिंदी में तैयार करा कर करोड़ों के वारे-न्यारे करते हैं। यह दोगलापन इस तथाकथित विरोध को सियासी ठहराने के लिए काफी है।

दक्षिण के राज्यों के विरोध के चलते केंद्र सरकार हिंदी को व्यापक बनाने के अपने दायित्व से पीछे हट जाती है तभी तो उसे त्रिभाषा फॉर्मूले में हिंदी की अनिवार्यता खत्म करनी पड़ी। अब सरकार के इस कदम का विरोध भी शुरू हो गया। पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने के मकसद से नई शिक्षा नीति को तैयार करने वाली समिति के दो वरिष्ठ सदस्यों ने बगैर सहमति त्रिभाषा फॉर्मूले से हिंदी को हटाए जाने का विरोध किया है। ऐसे में हिंदी के प्रति दक्षिणी राज्यों की इस हिचक की पड़ताल एक बड़ा मुद्दा है। हिंदी भारत ही नहीं, बल्कि विश्व में सर्वाधिक लिखी, बोली और समझी जाने वाली प्रथम भाषा के रूप में स्वीकार की गई है। भारत सहित एक सौ बत्तीस देशों के लगभग एक अरब लोगों की भाषा हिंदी है।

ऐसे में हाल ही में नई शिक्षा नीति के अंतर्गत हिंदी की अनिवार्यता समाप्त करने का जो संकेत सार्वजनिक किया गया है, शोचनीय है। शासन स्तर पर कस्तूरीरंगन समिति की ओर से त्रिभाषा सूत्र के अंतर्गत हिंदी के अस्तित्व-अस्मिता पर प्रहार करने का कुत्सित प्रयास किया गया है। ऐसी स्थिति में अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से हिंदी की अनिवार्यता समाप्त करने का अर्थ है, भारत की भावनात्मक एकता को आघात पहुंचाना। वैसे त्रिभाषा सूत्र कोई नया प्रयोग नहीं है।ऐसे में हिंदी की राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में दिख रही भूमिका प्रभावहीन बनकर रह जाएगी। लिहाजा, ऐसी किसी अप्रिय स्थिति से बचते हुए इसके समाधान की जरूरत है।

● *दिपिका शर्मा, सूरजकुंड, गोरखपुर*

गैरवाजिब नियम!

दुनिया में अमेरिका को छोड़ सभी महाद्वीपों में क्रिकेट का बहुत प्रभाव है जबकि एशियाई देशों में क्रिकेट खेलती टीमों की तादाद बड़ी है। लिहाजा, दर्शकों की संख्या भी बड़ी है। बेशक क्रिकेट के अपने कायदे-कानून हैं मगर जब दर्शक इनका हिस्सा बनता है तो खेल और खिलाड़ियों से जज्बाती रिश्ता बना लेता है। क्रिकेट के मैदान में दुनिया की सबसे बड़ी नाइंसाफी देख कर दर्शकों का सवाल करना लाजिमी है। अव्वल तो दो छोरों से दो बल्लेबाज भागते हुए एक 'रन' जुटाते हैं जो किसी एक बल्लेबाज के हिस्से में जाता है। इस तरह एक रन के लिए टीम के दो खिलाड़ियों का बेवजह दौड़ना वाजिब नहीं लगता। दूसरी तरफ जान पर खेल कर फील्डर 'कैच' पकड़ता है मगर आउट का सेहरा गेंदबाज के हक में जाता है। वही सवाल स्टंपिंग का है जो दरअसल रन-आउट है, गेंदबाज के खाते में जाना तर्कसंगत नहीं लगता है। ऐसे ही कुछ नाइंसाफी भरे कायदों पर क्रिकेट काउंसिल को गौर करना चाहिए।

● *एमके मिश्रा, रातू, रांची, झारखंड*

डॉक्टरों के साथ

कोलकाता के नीलरतन सरकार अस्पताल में दस जून को एक बुजुर्ग की मृत्यु के बाद जिस तरह जूनियर डॉक्टरों पर धावा बोला गया है, वह गुंडागर्दी के अलावा कुछ नहीं है। कुछ डॉक्टर घायल हुए, कुछ की तो जान पर बन आई। कायदे से सरकार को ऐसी अराजकता रोकने के लिए सख्ती से कदम उठाने चाहिए थे, पर वोट बैंक के चलते उसने हीलाहवाली ही दिखाई। ऐसा लगता है कि पश्चिम बंगाल सरकार राजनीतिक हित साधने के फेर में अपने मूल दायित्व को ही भूल गई। सरकार ने हमलावरों पर कार्रवाई करने के बजाय डॉक्टरों पर ही कार्रवाई की बात कही जिससे टकराव की नौबत आनी ही थी। निस्संदेह डॉक्टरों की हड़ताल का समर्थन नहीं किया जा सकता, पर उचित होता कि डॉक्टरों को सुरक्षा देकर सरकार उन्हें भय रहित माहौल प्रदान करती और हमलावरों के विरुद्ध कार्रवाई करती।डॉक्टरों को भी विचार करना चाहिए था कि हड़ताल करना कितना उचित और कितना नैतिक है? हड़ताल के कारण मरीजों का जीवन संकट में है। डॉक्टरों को अपनी शपथ के विषय में भी तो सोचना चाहिए था। हालांकि डॉक्टरों को अपनी बात कहने या विरोध करने का अधिकार है, पर उनका पेशा उन्हें हड़ताल करने की इजाजत नहीं देता।

● *आशुतोष अवस्थी, उन्नाव, उत्तर प्रदेश*

सुधार के बजाय

उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग ने अभ्यर्थियों के लिए चेतावनी और सजा से लैस सात नियमों वाला एक नोटिस निकाला है। ये सातों नियम सिर्फ अभ्यर्थियों के लिए हैं। आयोग की नजर में सारी समस्याओं की जड़ अभ्यर्थी ही हैं इसलिए उन्हें 'सुधारने' की दिशा में यह 'क्रांतिकारी व अनोखा कदम' उठाया गया है। बेहतर होता यदि इन नियमों के साथ एक नियम आयोग अपने लिए भी जोड़ देता कि भर्ती प्रक्रिया में किसी भी स्तर पर आयोग के किसी भी कर्मचारी/अधिकारी की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संलिप्तता होने पर निलंबन/ बर्खास्तगी की कार्रवाई करके मुकदमा दर्ज कराया जाएगा।

आयोग की यह कवायद पढ़ाई न करने वाले उस अभ्यर्थी की तरह है जो परीक्षाएं नजदीक आते ही अपनी आदतों से परेशान होकर 'व्हाट्सएप' और 'फेसबुक' डिलीट करता है, दोस्तों व घरवालों के फोन नहीं उठाता है और दरवाजे पर 'डू नॉट डिस्टर्ब' का पर्चा चिपका कर सोचता है कि अब पढ़ाई होगी कायदे से...! लेकिन इस कवायद से केवल दो काम होते हैं। पहला, जरूरी किताबों की धूल साफ हो जाती है और दूसरा, आसपास के लोगों में यह संदेश जाता है कि लड़का पढ़ाई के प्रति बहुत गंभीर है!

लेकिन हकीकत में इस कवायद से सिर्फ सोने का समय बढ़ता है क्योंकि जब तक आप सुधार की तलाश अपने से बाहर करते रहेंगे तब तक नाकामयाब ही रहेंगे। यह नियमों वाला नोटिस अखबारों की सुर्खियां बनने से आम लोगों में तो यही संदेश गया कि आयोग ने बहुत बड़ा सुधार किया है लेकिन हकीकत अभ्यर्थी ही जानते हैं।

● *राहुल उपाध्याय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com